Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

वैष्णव परंपरा तथा मौखिक साहित्य: उत्तर भारत की भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता के साथ समाजशास्त्रीय अंत:संवाद

कामिनी सिंह[1*], जयशंकर प्रसाद पांडेय[2]

[1] शोध छात्रा,समाजशास्त्र विभाग,लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

[2]शोध पर्यवेक्षक आचार्य ,समाजशास्त्र विभाग,लखनऊ विश्वविद्यालय

पत्राचार हेतु ई-मेल आईडी : kaminisinghsoc022@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र उत्तर भारत की भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता के निर्माण में वैष्णव परंपरा एवं मौखिक साहित्य की भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन गुणात्मक, वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक समीक्षा के रूप में किया गया है जिसमें द्वितीयक स्रोतों यथा समाजशास्त्रीय शोध-पत्र, ऐतिहासिक ग्रंथ, आलोचनात्मक लेख, मौखिक साहित्य आदि पर केंद्रित अध्ययन का समेकन किया गया। शोध का दायरा उत्तर भारत की भाषाई परंपराओं (यथा अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही, खड़ीबोली) एवं उनसे संबंधित मौखिक विधाओं (यथा भजन, कीर्तन, कथा, प्रवचन और रामलीला) तक सीमित रहा। विश्लेषण से चार मुख्य थीम उभरीं (1) भक्ति आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन, (2) वैष्णव परंपरा में मौखिक साहित्य का योगदान, (3) भाषाई विविधता और वैष्णव साहित्य, तथा (4) मौखिक परंपरा एवं सांस्कृतिक अस्मिता। निष्कर्ष रूप में पाया गया कि वैष्णव मौखिक परंपराओं ने जातिगत विषमताओं एवं धार्मिक पाखंड को चुनौती दी एवं वंचित वर्गों और स्त्रियों को सांस्कृतिक अस्मिता प्रदान की तथा लोकभाषाओं को साहित्यिक गरिमा देकर सामाजिक लोकतंत्र को सुदृढ़ किया। तुलसीदास, सूरदास, कबीर, रविदास, मीरा आदि जैसे संतों-कवियों ने लोकजीवन को धर्म-संस्कृति के साझा अर्थों से जोड़ा। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि वैष्णव मौखिक साहित्य केवल धार्मिक विमर्श न होकर 'जीवित अभिलेखागार' (living archives) है जो सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामाजिक समावेशन को संरक्षित करता है। इस प्रकार वैष्णव परंपरा और मौखिक साहित्य ने उत्तर भारत में भाषाई-सांस्कृतिक पहचान को आकार देकर 'विविधता में एकता' के भारतीय आदर्श को मूर्त रूप दिया।

मुख्य शब्द: वैष्णव परंपरा, मौखिक साहित्य, भक्ति आंदोलन, सांस्कृतिक स्मृति, भाषाई अस्मिता, सामाजिक समावेशन, उत्तर भारत

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

परिचय

भारत की सांस्कृतिक परंपराएँ सदैव अपनी विविधता, सहिष्णुता एवं लोकाभिव्यक्ति हेतु जानी जाती रही हैं। उत्तर भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन (14वीं-17वीं शताब्दी) एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में उभरता है जब इस आंदोलन ने न केवल धार्मिक चेतना को नया आयाम दिया अपितु सामाजिक असमानताओं को चुनौती देकर लोकतांत्रिक एवं समावेशी मूल्यों की नींव भी रखी। वैष्णव परंपरा इस आंदोलन का प्रमुख अंग रही जिसने भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों (विशेषकर राम और कृष्ण) की भक्ति को सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से जोड़ा। उत्तर भारत में वैष्णव परंपरा ने ख़ासकर लोकभाषाओं यथा अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही, खड़ीबोली आदि को साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमा प्रदान की। तुलसीदास की *रामचरितमानस* (अवधी), सूरदास का *सूरसागर* (ब्रज), विद्यापति की पदावली (मैथिली) एवं भोजपुरी-मगही लोकगीत इस बात के प्रमाण हैं कि मौखिक साहित्य ने क्षेत्रीय भाषाओं को केवल संप्रेषण का माध्यम न रखकर सांस्कृतिक अस्मिता और सामूहिक स्मृति का संवाहक बनाया। मौखिक साहित्य के रूप में भजन, कीर्तन, प्रवचन, कथा और रामलीला आदि ने धार्मिक ग्रंथों को जीवित अनुभवों तथा लोक-संवाद में परिवर्तित किया। रामकथा और कृष्णलीला के प्रसंगों ने न केवल धार्मिक भक्ति का संचार किया अपितु सामाजिक नैतिकता, समावेशन और सांस्कृतिक लोकतंत्र का भी आधार तैयार किया। उदाहरण के तौर पर तुलसीदास ने अवधी को केवल ग्रामीण बोली न रहने देकर भारत का 'सांस्कृतिक संविधान' बना दिया तो वहीं सूरदास ने ब्रजभाषा को कृष्ण-भक्ति और रस-लीला के माध्यम से सार्वभौमिक पहचान दिलाई। इस हेतु संत कवियों और भक्तों का योगदान समाजशास्त्रीय दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। कबीर एवं रविदास ने जातिगत भेदभाव तथा धार्मिक पाखंड का विरोध करते हुए भक्ति को सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा का मार्ग बताया। मीरा जैसी स्त्रियों ने अपने भक्ति गीतों के माध्यम से लैंगिक असमानताओं को चुनौती दी। इस तरह वैष्णव मौखिक परंपराएँ केवल धार्मिक साधना का साधन न होकर सामाजिक प्रतिरोध, सांस्कृतिक स्मृति, सामूहिक अस्मिता की वाहक बनीं। सैद्धांतिक रूप से, इस विमर्श को *Cultural Memory* (Assmann, 2011), *Subaltern Studies*, *Interpretive Anthropology* (Geertz, 1973) तथा *Performance Studies* के ढाँचे में समझा जा सकता है। ये सिद्धांत इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि किस तरह मौखिक परंपराएँ समाज में साझा अर्थ, स्मृति और पहचान का निर्माण करती हैं। अतः, प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि वैष्णव परंपरा तथा मौखिक साहित्य ने उत्तर भारत में भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता को कैसे आकार दिया, जातिगत एवं लैंगिक विषमताओं को कैसे चुनौती दी साथ ही सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक लोकतंत्र

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

को कैसे सुदृढ़ किया। यह अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि वैष्णव मौखिक साहित्य भारतीय समाज में 'विविधता में एकता' का सबसे सशक्त सांस्कृतिक माध्यम रहा है।

शोध उद्देश्य

1. उत्तर भारत की भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता के निर्माण में वैष्णव परंपरा एवं मौखिक साहित्य (यथा भजन, कीर्तन, प्रवचन, कथा और रामलीला) की समाजशास्त्रीय भूमिका का विश्लेषण करना।
2. यह समझना कि किस प्रकार वैष्णव मौखिक परंपराएँ ख़ासकर अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी और मगही जैसी भाषाओं में सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक समावेशन का आधार बनीं।
3. यह स्पष्ट करना कि भक्ति आंदोलन और वैष्णव साहित्य ने जातिगत व लैंगिक असमानताओं को कैसे चुनौती दी तथा भारतीय समाज में लोकतांत्रिक-बहुलतावादी मूल्यों को कैसे सुदृढ़ किया।

सामग्री एवं शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक, वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक रूप में तैयार किया गया है जिसका उद्देश्य वैष्णव परंपरा एवं मौखिक साहित्य के समाजशास्त्रीय संदर्भों का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस शोध आलेख हेतु द्वितीयक स्रोतों यथा प्रकाशित साहित्य, ऐतिहासिक ग्रंथ, समाजशास्त्रीय शोध-पत्र, आलोचनात्मक निबंध, सरकारी रिपोर्टें एवं प्रामाणिक विद्वत लेख आदि का उपयोग करके एक व्यवस्थित समीक्षा की गई है। अध्ययन का भौगोलिक दायरा उत्तर भारत तक सीमित रखा गया जिसमें विशेष रूप से अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही, खड़ीबोली जैसी भाषाई परंपराओं तथा उनसे जुड़ी मौखिक परंपराओं यथा भजन, कीर्तन, प्रवचन, कथा और रामलीला को समाजशास्त्रीय दृष्टि से केंद्र में रखा गया है क्योंकि ये भाषाएँ एवं उनके अंतर्गत विकसित धार्मिक-लोक परंपराएँ भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति, आस्था और सामाजिक समावेशन के आधारस्तंभ मानी जाती हैं। अध्ययन की अवधि एक माह रही जिसके दौरान संबंधित स्रोतों का गहन अवलोकन-विश्लेषण किया गया। सम्बंधित साहित्य संग्रह हेतु गूगल स्कॉलर, जे-स्टोर, स्कोपस, शोध-गंगा जैसे डेटाबेसों का उपयोग किया गया साथ ही हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में उपलब्ध पुस्तकों, जर्नल लेखों, आलोचनात्मक साहित्य को समुचित रूप से सम्मिलित किया गया। खोज प्रक्रिया में वैष्णव परंपरा, मौखिक साहित्य, भक्ति आंदोलन, सांस्कृतिक स्मृति, भाषाई अस्मिता, सामाजिक समावेशन, जैसे प्रमुख कीवर्ड का प्रयोग किया गया और बूलियन ऑपरेटर के माध्यम से खोज को परिष्कृत करते हुए केवल समीक्षित तथा

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

प्रामाणिक स्रोतों का चयन किया गया। चयन मानदंड के अंतर्गत केवल वे ही स्रोत शामिल किए गए जो भक्ति आंदोलन एवं वैष्णव परंपरा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हों तथा मौखिक साहित्य की सांस्कृतिक और समाजशास्त्रीय भूमिका का विवेचन करते हों। एकत्रित सामग्री का विश्लेषण थीमैटिक श्रेणियों में किया गया जिससे चार प्रमुख विमर्श उभरे भक्ति आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन, वैष्णव परंपरा में मौखिक साहित्य का योगदान, भाषाई विविधता और वैष्णव साहित्य की सामाजिक भूमिका, तथा मौखिक परंपरा और सांस्कृतिक अस्मिता का अंतर्संबंध। प्रत्येक स्रोत का मूल्यांकन इस दृष्टि से किया गया कि वह समाज में वैष्णव परंपरा की भूमिका, उसके अंतर्गत समाहित सामाजिक-आध्यात्मिक समानता के विचार और भाषाई-सांस्कृतिक एकता की प्रक्रिया को किस प्रकार व्याख्यायित करता है। अंततः समस्त विश्लेषण इस निष्कर्ष पर केंद्रित रहा कि वैष्णव मौखिक परंपराएँ केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं अपितु सामाजिक एकता, सांस्कृतिक निरंतरता और लोक-स्मृति के संरक्षण की भी वाहक रही हैं।

परिणाम

इस अध्ययन में संकलित साहित्य एवं मौखिक परंपराओं के गुणात्मक विश्लेषण से चार प्रमुख विषय-वर्ग उभरे। प्रत्येक थीम वैष्णव परंपरा और मौखिक साहित्य की समाजशास्त्रीय भूमिका को स्पष्ट करता है।

1.भक्ति आंदोलन तथा सामाजिक परिवर्तन

भक्ति आंदोलन भारतीय समाज के इतिहास में एक गहन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक था जो 14वीं से 17वीं शताब्दी के बीच उस समय उभरा जब समाज जातिगत ऊँच-नीच, धार्मिक पाखंड, सामाजिक विभाजन के साथ ही कर्मकांड की कठोर परंपराओं में जकड़ा हुआ था। इस आंदोलन ने ईश्वर भक्ति को केवल आध्यात्मिक मुक्ति का साधन नहीं अपितु सामाजिक समानता और मानवता के मूल्य स्थापित करने का माध्यम बनाया। दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य (1017-1137) ने विशिष्टाद्वैत वेदांत के सिद्धांत के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि भक्ति केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी एवं लोककल्याण का भी मार्ग है। उनके विचारों ने भक्ति को धर्म, समाज, नैतिकता के त्रिवेणी संगम के रूप में स्थापित किया। उत्तर भारत में इस परंपरा को रामानंद (14वीं-15वीं सदी) ने आगे बढ़ाया जिन्होंने संस्कृत जैसी उच्चवर्गीय भाषा की बजाय अवधी और हिंदी जैसी जनभाषाओं को माध्यम बनाकर भक्ति के संदेश को आम जनता तक पहुँचाया जिससे सामाजिक समरसता तथा धार्मिक लोकतंत्र की भावना को बल मिला। कबीर (1398-1518) ने अपने निर्गुण भक्ति दर्शन के माध्यम से जाति, पंथ, धार्मिक पाखंड आदि का तीखा विरोध करते हुए यह संदेश दिया कि सच्ची भक्ति बाहरी आडंबरों से नहीं अपितु मानवीय संवेदना, सहअस्तित्व और

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

समानता की चेतना से उत्पन्न होती है। इसी तरह संत रविदास (15वीं-16वीं सदी) जो स्वयं वंचित वर्ग से थे ने अपने पदों में सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और समान अवसर की बात करते हुए दलितों एवं श्रमजीवी वर्गों को एक नई सांस्कृतिक पहचान तथा गरिमा प्रदान की। उनकी वाणी ने यह सिद्ध किया कि अध्यात्म केवल साधु-संतों का अधिकार नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी क्रम में सूरदास (1478-1583) ने ब्रजभाषा में *सूरसागर* की रचना कर कृष्ण भक्ति को लोकजीवन से जोड़ा और प्रेम, करुणा, भक्ति के माध्यम से सामाजिक समरसता की भावना को पुष्ट किया तो वहीं तुलसीदास (1532-1623) ने अपनी *रामचरितमानस* के माध्यम से अवधी भाषा को न केवल साहित्यिक गरिमा दी अपितु उसे उत्तर भारतीय समाज की सांस्कृतिक अस्मिता और नैतिक चेतना का आधार बना दिया। इन संतों की वाणी और रचनाएँ धर्म-समाज के बीच एक सेतु बन गईं,] जिन्होंने जाति, वर्ग और पंथ की दीवारों को तोड़कर भक्ति को सार्वभौमिक अनुभव का रूप दिया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज में एक गहरी क्रांति लाई जिसने वंचित वर्गों को स्वर, जनभाषाओं को सम्मान तथा धर्म को मानवतावादी आधार प्रदान किया, जिससे सामाजिक परिवर्तन, भाषाई पुनर्जागरण और सांस्कृतिक एकता की प्रक्रिया को नई गति मिली।

2.वैष्णव परंपरा में मौखिक साहित्य का योगदान

भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने धर्म, दर्शन, संस्कृति को केवल ग्रंथों की सीमाओं से निकालकर जनजीवन की भाषा और संवेदना से जोड़ा, वैष्णव परंपरा में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक सशक्त रूप में दिखाई देती है। वैष्णव भक्ति ने मौखिक साहित्य को अपने प्रसार का प्रमुख माध्यम बनाया जिससे राम-कृष्ण जैसे लोकदेवताओं की भक्ति केवल मंदिरों अथवा शास्त्रों तक सीमित न रहकर सामान्य जन की जीवनचर्या एवं लोकसंस्कृति का हिस्सा बन गई। भजन, लोकगीत, प्रवचन, कथा, कीर्तन और रामलीला जैसे मौखिक रूपों ने भक्ति को न केवल धार्मिक भावना के रूप में अभिव्यक्त किया बल्कि सामाजिक एकता, सांस्कृतिक अस्मिता-नैतिक चेतना के वाहक के रूप में भी विकसित किया। लोकगीत और भजन ने ग्रामीण समाज में ईश्वर-भक्ति को सरल, सुगम और सजीव रूप में पहुँचाया; सूरदास के कृष्ण-पदों में भक्ति के साथ मानवीय भावनाओं की गहराई है तो वहीं तुलसीदास की चौपाइयों में भक्ति, नीति, लोकमर्यादा आदि का अद्भुत समन्वय मिलता है। इन रचनाओं ने धर्म को व्यक्तिगत साधना से ऊपर उठाकर सामाजिक आचरण एवं सांस्कृतिक अनुशासन का रूप दिया। कथा और प्रवचन की परंपरा ने धार्मिक अनुभव को संवादात्मक रूप प्रदान किया यथा रामकथा, भागवत कथा और अन्य प्रवचन सभाओं में संतों ने धर्म और नीति की बातें सरल जनभाषा में कही जिससे शिक्षा और धर्म दोनों का लोकतंत्रीकरण हुआ। इन प्रवचनों ने जाति, वर्ग, लिंग की दीवारों को पिघलाकर सबको एक साझा सांस्कृतिक संवाद में जोड़ा। इसी प्रकार कीर्तन और रामलीला जैसी

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

सामूहिक नाट्य परंपराओं ने भक्ति को लोक-उत्सव का स्वरूप दिया जहाँ समाज के प्रत्येक वर्ग यथा दलित, स्त्री, किसान, कारीगर और व्यापारी की सहभागिता समान रूप से रही। रामलीला ने रामचरितमानस को जीवित संस्कृति का अंग बना दिया जिससे धर्म ग्रंथ से निकलकर लोकजीवन में प्रवाहित हुआ। इन मौखिक परंपराओं ने न केवल धार्मिक संदेशों को जन-जन तक पहुँचाया अपितु उन्होंने भाषा, संगीत, नाट्य और प्रदर्शन की लोकधारा को एकीकृत कर भारतीय समाज में सांस्कृतिक निरंतरता और सामूहिक स्मृति का निर्माण किया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो वैष्णव मौखिक साहित्य ने धर्म को लोकसंस्कृति में रूपांतरित कर सामाजिक असमानताओं को चुनौती दी, भाषाई विविधता को सशक्त किया और समावेशी भारतीय समाज के लोकतांत्रिक स्वरूप को पुष्ट किया। इस प्रकार यह परंपरा केवल आस्था की नहीं बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक एकता तथा लोकमानस की जीवंत अभिव्यक्ति है।

3.भाषाई विविधता तथा वैष्णव साहित्य

उत्तर भारत की भाषाई परंपरा अपनी बहुरंगी-बहुआयामी संरचना के कारण भारतीय समाज के सांस्कृतिक ताने-बाने की आत्मा रही है जहाँ अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही और खड़ीबोली जैसी भाषाएँ मात्र संप्रेषण के साधन नहीं अपितु सामाजिक स्मृति, सांस्कृतिक अस्मिता तथा धार्मिक चेतना की वाहक रही हैं। वैष्णव भक्ति आंदोलन ने इन लोकभाषाओं को अभूतपूर्व साहित्यिक और आध्यात्मिक गरिमा प्रदान की जिससे वे केवल क्षेत्रीय बोलियाँ न रहकर उत्तर भारत के साझा सांस्कृतिक मानस का प्रतीक बन गईं। तुलसीदास ने अवधी को *रामचरितमानस* के माध्यम से नई ऊँचाई दी, जहाँ यह भाषा लोकजीवन की सादगी और भक्तिभाव का प्रतीक बनी। *रामचरितमानस* केवल धार्मिक कथा नहीं बल्कि सामाजिक एकता, नैतिक आदर्श, समावेश की गाथा थी जिसने अवधी को एक 'सांस्कृतिक संविधान' के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसी तरह ब्रजभाषा ने सूरदास और मीराबाई के माध्यम से भक्ति के भावात्मक और प्रतिरोधात्मक पक्ष को उजागर किया। सूरदास के *सूरसागर* में कृष्ण की बाल लीलाओं के माध्यम से करुणा, प्रेम और भक्ति का लोक-संस्कृति से गहरा संबंध दिखाई देता है जबकि मीरा के पदों ने स्त्री की आध्यात्मिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक बंधनों के विरुद्ध उसके प्रतिरोध को स्वर दिया। इन दोनों की रचनाओं ने ब्रजभाषा को धार्मिकता-भावनात्मक गहराई का माध्यम बना दिया। मिथिला क्षेत्र में मैथिली भाषा विद्यापति की पदावली से प्रतिष्ठित हुई जहाँ प्रेम एवं भक्ति का अनूठा संगम देखने को मिलता है। उनके गीतों ने यह सिद्ध किया कि क्षेत्रीय भाषाएँ भी दार्शनिक-आध्यात्मिक विमर्श को उतनी ही गहराई से अभिव्यक्त कर सकती हैं जितनी संस्कृत अथवा प्राकृत जैसी परंपरागत भाषाएँ। भोजपुरी और मगही की लोक परंपराएँ भजन, कथा और लोकगीत ने ग्रामीण समाज में धर्म और संस्कृति को जोड़ने का माध्यम प्रदान किया। भोजपुर एवं मगध के भक्ति गीतों में राम-कृष्ण के प्रति

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

आस्था के साथ-साथ सामाजिक एकता तथा सामूहिक चेतना का स्वर सुनाई देता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो वैष्णव साहित्य में भाषाई विविधता ने भारतीय समाज को बहुलता में एकता के सूत्र में बाँधा; तुलसी, सूर, मीरा और विद्यापति जैसे कवियों ने यह सिद्ध किया कि भक्ति का सार केवल संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों में नहीं अपितु लोकभाषाओं की मिट्टी में रचे-बसे भावों में निहित है। इन भाषाओं को साहित्यिक प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक महत्त्व देकर वैष्णव साहित्य ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक लोकतंत्र, भाषाई समावेशन और सामाजिक समानता की भावना को सशक्त किया।

4.मौखिक परंपरा तथा सांस्कृतिक अस्मिता

सांस्कृतिक अस्मिता किसी समाज की साझा स्मृतियों, प्रतीकों, आस्थाओं एवं परंपराओं का वह जीवंत रूप है जो उसकी पहचान तथा निरंतरता को परिभाषित करता है और उत्तर भारत में वैष्णव परंपरा से जुड़ी मौखिक विधाओं यथा भजन, कीर्तन, कथा, प्रवचन और रामलीला ने इस सांस्कृतिक अस्मिता के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये मौखिक परंपराएँ केवल धार्मिक अनुष्ठान अथवा आध्यात्मिक अभ्यास नहीं रहीं अपितु उन्होंने समाज के सामूहिक अनुभवों और भावनाओं को भाषा, संगीत तथा कथा के रूप में रूपायित किया। गाँवों और कस्बों में गाए जाने वाले भजन-लोकगीत न केवल ईश्वर-भक्ति के माध्यम थे अपितु वे सामाजिक एकता के साथ ही लोक-संवेदना के प्रतीक भी बन गए। प्रवचन और कथा-परंपरा जैसे रामकथा और भागवत कथा ने धर्म को शास्त्रों की जटिलता से मुक्त कर सरल लोकभाषाओं में प्रस्तुत किया जिससे समाज का प्रत्येक वर्ग चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, उच्च जाति का हो अथवा वंचित इनसे जुड़ सका। इसी तरह रामलीला, झूलन उत्सव और हरिवंश की कथाओं ने भक्ति को उत्सव, नाटक, लोकअनुभव में रूपांतरित कर दिया जिससे धार्मिक अनुभव सांस्कृतिक जीवन की आत्मा बन गया। सांस्कृतिक अध्ययन के विद्वान जान अस्मन (Jan Assmann, 2011) के अनुसार मौखिक परंपराएँ किसी भी समाज की सामूहिक स्मृति का केंद्र होती हैं एवं उत्तर भारत में रामचरितमानस की चौपाइयाँ, सूरदास के पद तथा लोकभाषाओं के कृष्णभजन इसी सामूहिक स्मृति की निरंतरता का प्रमाण हैं। ये रचनाएँ केवल ग्रंथ नहीं अपितु पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होती जीवंत सांस्कृतिक धरोहर हैं जिन्होंने समाज को अपने अतीत से जोड़े रखा तथा सांस्कृतिक निरंतरता सुनिश्चित की। इन परंपराओं की एक विशेषता यह भी रही कि इनमें सामाजिक समावेशन का गहरा भाव था यथा कबीर और रविदास जैसे संतों ने जातिगत असमानताओं को चुनौती दी, वहीं मीरा और गंगा रौतायिन जैसी स्त्री संतों की भक्ति वाणी ने स्त्रियों को सांस्कृतिक विमर्श का सक्रिय भागीदार बनाया। इस प्रकार मौखिक परंपराओं ने सांस्कृतिक अस्मिता को उच्चवर्गीय अभिजात संस्कृति से निकालकर लोकतांत्रिक, लोक आधारित एवं बहुस्तरीय रूप में विस्तारित किया। भाषाई विविधता के स्तर पर भी इन परंपराओं ने अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी और मगही जैसी भाषाओं को

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

एक साझा सांस्कृतिक सूत्र में बाँधा। तुलसीदास की *रामचरितमानस* (अवधी), सूरदास का *सूरसागर* (ब्रज), विद्यापति की पदावली (मैथिली) और भोजपुरी-मगही लोकगीत इस बात के प्रमाण हैं कि भक्ति के स्वर ने भाषाई भेद मिटाकर 'विविधता में एकता' के भारतीय आदर्श को साकार किया जिससे मौखिक परंपराएँ सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक एकता एवं आध्यात्मिक लोकतंत्र की आधारशिला बन गईं।

चर्चा

यह समीक्षा इस बात का समेकित अवलोकन प्रस्तुत करती है कि किस प्रकार वैष्णव परंपरा तथा मौखिक साहित्य उत्तर भारत की भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता को विभिन्न क्षेत्रों (यथा अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही) तथा सामाजिक समूहों में आकार देते हैं। इस विमर्श को समझने हेतु सांस्कृतिक स्मृति, सबाल्टर्न दृष्टिकोण, प्रदर्शन और लोकभाषीकरण जैसे सिद्धांत विशेष रूप से उपयुक्त सिद्ध होते हैं। अधिकांश समीक्षित अध्ययनों ने अपने विश्लेषण को इन्हीं ढाँचों में निहित किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी (1952) तथा रामचंद्र शुक्ल (1929) जैसे बुनियादी अध्येताओं ने भक्ति को भारतीय समाज में लोकतंत्रीकरण की शक्ति बताया है जिसने सामाजिक पदानुक्रम को चुनौती दी साथ ही व्यापक जनभागीदारी को संभव बनाया। इसके पूरक के रूप में वन्सिना (1965) और अस्मन (2011) ने मौखिक परंपरा तथा सांस्कृतिक स्मृति को सामूहिक पहचान के स्थायी वाहक के रूप में समझाया है। सभी अध्ययनों में एक सामान्य सैद्धांतिक पृष्ठभूमि उभरती है कि वैष्णव मौखिक अभ्यास भजन-कीर्तन, कथा-प्रवचन एवं नाटकीय रूप जैसे रामलीला व झूलन जीवित अभिलेखागार के रूप में कार्य करते हैं जो ग्रंथ और समुदाय, सिद्धांत और लोकजीवन के बीच मध्यस्थता करते हैं (लुत्गेंदोर्फ़, 1991; वाडेविल, 1996)। क्लिफोर्ड गीर्त्ज़ (1973) की व्याख्यात्मक नृविज्ञान के अनुसार संस्कृति साझा अर्थों की प्रणाली है; इस दृष्टि से भक्ति-प्रदर्शन ऐसे स्थल बनते हैं जहाँ साझा अर्थ उत्पन्न, पहचाने और पुनः सृजित किए जाते हैं। कृष्ण-भक्ति परंपरा पर केंद्रित अध्ययनों (किन्सले, 1979) से यह भी स्पष्ट हुआ कि रस, लीला और सौंदर्यशास्त्र ने भावनात्मक समुदायों को गढ़कर ग्रामीण-शहरी विभाजनों के पार सामूहिकता को स्थिर किया। साहित्य में पाए गए प्रमुख पूर्वगामी कारक यथा जाति, लिंग, शिक्षा और क्षेत्र-भाषा रहे; सक्षमकारी कारक में मंदिर, मेले, सत्संग-कीर्तन मंडलियाँ, मीडिया और सामुदायिक नेतृत्व सम्मिलित हैं तो वहीं आवश्यकता आधारित कारक में आध्यात्मिक खोज, सामाजिक बहिष्कार के अनुभव, और गरिमा व अभिव्यक्ति की तलाश सम्मिलित हैं। सबाल्टर्न अध्ययन यह दर्शाते हैं कि वही मौखिक परंपराएँ जो धार्मिक आख्यान को पवित्र बनाती हैं वे वंचित वर्गों को प्रतीकात्मक पूँजी भी प्रदान करती हैं। नारीवादी दृष्टिकोण इसे और आगे बढ़ाते हुए दिखाते हैं कि स्त्रियों की भक्ति-लेखन और मौखिक अभिव्यक्ति ने आत्मबोध, पवित्रता और प्रतिरोध के नए आयाम गढ़े। समीक्षित अध्ययनों

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

से सामान्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैष्णव मौखिक परंपराएँ जातिगत दूरी को प्रतीकात्मक रूप से घटाती हैं, स्त्रियों की भागीदारी को बढ़ाती हैं तथा भाषाओं के बीच साझा सांस्कृतिक व्याकरण को मजबूत करती हैं। भाषाई अस्मिता के संदर्भ में साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि भक्ति ने लोकभाषाओं को साहित्यिक गरिमा दी अवधी को *रामचरितमानस* से, ब्रज को *सूरसागर* से और मैथिली को विद्यापति पदावली से (शुक्ल, 1929; किन्सले, 1979)। यह प्रवृत्ति हाल के विश्लेषणों से मेल खाती है जो भक्ति को लोकभाषाई साहित्यिक जगत और सांस्कृतिक लोकतंत्र का उत्प्रेरक मानते हैं। डिजिटल ह्यूमैनिटीज़ के क्षेत्र में बढ़ते कार्य (बोधुआ, 2025) इन गुणात्मक निष्कर्षों को और सुदृढ़ करते हैं क्योंकि उनके विश्लेषण से समान थीम्स - समानता, समावेशिता, अनुष्ठानवाद की आलोचना और नैतिक समुदाय का निर्माण कई कवियों और क्षेत्रों में बार-बार प्रकट होते हैं। सांस्कृतिक स्मृति के संदर्भ में समीक्षा यह पुष्ट करती है कि रामलीला, झूलन और कथा चक्र जैसी मौखिक प्रस्तुतियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्मृतियों का संवाहन करती हैं (मित्र, 2024; अस्मन, 2011; लुत्गेंदोर्फ़, 1991)। यह वन्सिना (1965) की उस धारणा से मेल खाता है कि मौखिक परंपरा क्षणिक मनोरंजन नहीं अपितु विश्वसनीय सामाजिक ज्ञान है। यद्यपि कि कुछ अध्ययनों ने यह भी दर्शाया कि संस्थागत कोडिफिकेशन कभी-कभी पदानुक्रम को पुनःस्थापित कर देता है और विवादित स्वरों को दबा देता है। यह संकेत करता है कि समावेशन और प्रतिरोध एक गतिशील संतुलन में रहते हैं (दहिया & दहिया, 2025; मित्र, 2025)। यह दृष्टिकोण सबाल्टर्न और नारीवादी आलोचनाओं से मेल खाता है जो लोकतंत्रीकरण को एक रैखिक परिणाम नहीं अपितु उतार-चढ़ाव वाली प्रक्रिया मानते हैं।

निष्कर्ष

इस शोध के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि वैष्णव परंपरा तथा उससे संबद्ध मौखिक साहित्य यथा भजन, कीर्तन, प्रवचन, कथा और रामलीला आदि ने केवल धार्मिक आस्था का ही नहीं अपितु उत्तर भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्गठन का भी कार्य किया। इन परंपराओं ने धर्म को लोकभाषा, लोकसंस्कृति, लोकजीवन से जोड़कर एक ऐसी साझा चेतना का निर्माण किया जिसने भाषा, जाति, वर्ग और लिंग की सीमाओं को लांघकर समाज में समरसता तथा संवाद की भावना को सशक्त किया। तुलसीदास, सूरदास, विद्यापति एवं मीरा जैसे संतों ने अवधी, ब्रज, मैथिली, भोजपुरी, मगही और खड़ीबोली जैसी भाषाओं को साहित्यिक गरिमा प्रदान कर उन्हें जन-जीवन की संस्कृति का अंग बना दिया जिससे ये भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम न रहकर सामूहिक अस्मिता तथा सांस्कृतिक गौरव की प्रतीक बन गईं। कबीर और रविदास की वाणी ने जातिगत भेदभाव, धार्मिक पाखंड तथा सामाजिक विषमता को चुनौती दी एवं वंचित और दलित समुदायों को आत्मसम्मान और सामाजिक पहचान दी, वहीं मीरा और गंगा रौतायिन जैसी संत-स्त्रियों की रचनाओं ने स्त्रियों के स्वत्व अभिव्यक्ति को भक्ति के

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

माध्यम से समाज के केंद्र में लाकर लैंगिक असमानताओं को तोड़ा। रामलीला, झूलन और भागवत कथा जैसे लोकनाट्य और उत्सव रूपों ने धार्मिक अनुभव को लोक संवेदना में रूपांतरित करते हुए समाज की सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक निरंतरता को जीवित रखा। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैष्णव मौखिक परंपराएँ केवल भक्ति की अभिव्यक्ति नहीं अपितु भारतीय समाज के लोकतांत्रिक, समावेशी और बहुलतावादी चरित्र की सशक्त सांस्कृतिक नींव हैं जिन्होंने 'विविधता में एकता' के भारतीय आदर्श को व्यवहारिक रूप में साकार किया। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि इन परंपराओं के संरक्षण और संवर्धन हेतु ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है भजन, लोकगीत, प्रवचन और रामलीला जैसी विधाओं का डिजिटल अभिलेखीकरण, स्थानीय भाषाओं में उनका प्रलेखन तथा समुदायों की सक्रिय भागीदारी से उनका पुनरुद्धार अनिवार्य है। शिक्षा के क्षेत्र में इन परंपराओं को अंतर्विषयी अध्ययन के रूप में शामिल किया जाना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी भाषा, समाजशास्त्र, संस्कृति और धर्म के अंतर्संबंधों को समझ सकें। स्त्री संतों एवं दलित परंपराओं को विशेष रूप से संकलित कर उनके योगदान को मुख्यधारा विमर्श में लाना चाहिए जिससे कि सांस्कृतिक विमर्श अधिक समावेशी बन सके साथ ही सरकारी और संस्थागत स्तर पर सांस्कृतिक नीतियों में इनके संरक्षण हेतु योजनाएँ बनाई जाएँ और कलाकारों को सामाजिक सुरक्षा, प्रशिक्षण तथा मानदेय की सुविधा प्रदान की जाए। अध्ययन की सीमाओं में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यह शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित रहा तथा उत्तर भारत तक सीमित होने के कारण दक्षिण और पश्चिम भारत की वैष्णव परंपराओं की तुलनात्मक दृष्टि सम्मिलित नहीं हो सकी। कुछ लोकभाषाओं पर पर्याप्त साहित्य के अभाव एवं सीमित समय सीमा के कारण विश्लेषण की गहराई भी सीमित रही। अतः भविष्य में प्राथमिक फील्डवर्क, तुलनात्मक अध्ययन तथा बहु-क्षेत्रीय दृष्टिकोण से इस विषय पर अधिक गहन अनुसंधान की आवश्यकता बनी हुई है जिससे वैष्णव मौखिक परंपराओं की व्यापकता और उनके सामाजिक प्रभाव का समग्र मूल्यांकन संभव हो सके।

सन्दर्भ सूची

1. शुक्ल, आर. सी. (1929). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*. ज्ञान मन्दिर।
2. वान्सिना, जे. (1965). *ओरल ट्रेडिशन: ए स्टडी इन हिस्टॉरिकल मेथडॉलॉजी*. रूटलेज।
3. वॉडविल, सी. (1974). *कबीर*. क्लैरेंडन प्रेस।
4. किन्सले, डी. (1979). *द डिवाइन प्लेयर: ए स्टडी ऑफ़ कृष्ण लीला*. मोतीलाल बनारसीदास।
5. शोमर, के., एवं मैक्लियॉड, डब्ल्यू. एच. (संपा.). (1987). *द सन्त्स: स्टडीज़ इन ए डिवोशनल ट्रेडिशन ऑफ़ इंडिया*. मोतीलाल बनारसीदास।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

6. मित्र, डी. पी. (2025). *नॉलेज सिस्टम्स एंड रिलीजियस एस्सेटिसिज़्म: ए सोशियोलॉजिकल स्टडी ऑफ़ वैष्णव साधुस इन काशी. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी एंड ह्यूमैनिटीज़.* https://doi.org/10.33545/26648679.2025.V7.I1A.126
7. वान डेर वीर, पी. (1987). *टेमिंग द एस्सेटिक: डिवोशनलिज़्म इन ए हिन्दू मोनास्टिक ऑर्डर. मैन, न्यू सीरीज़,* 22(4), 680-695।
8. लुटगेंडॉर्फ, पी. (1991). *द लाइफ़ ऑफ़ ए टेक्स्ट: परफॉर्मिंग द रामचरितमानस ऑफ़ तुलसीदास.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस।
9. रिचमैन, पी. (1991). *मेनी रामायणाज़: द डाइवर्सिटी ऑफ़ ए नैरेटिव ट्रेडिशन इन साउथ एशिया.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस।
10. मित्र, डी. पी. (2025). *रिलिजियस टूरिज्म एंड एस्सेटिक इंटेग्रिटी: ए सोशियोलॉजिकल स्टडी ऑफ़ इकोनॉमिक डिपेंडेंसी एंड सेक्रेड ऑथेन्टिसिटी इन वाराणसी. जर्नल ऑफ़ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंस.* https://doi.org/10.35629/9467-13077280
11. अस्मन, जे. (2011). *कल्चरल मेमरी एंड अर्ली सिविलाइज़ेशन: राइटिंग, रिमेम्ब्रेंस, एंड पॉलिटिकल इमैजिनेशन.* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. वॉडविल, सी. (2017). *ए वीवर नेम्ड कबीर: सेलेक्टेड वर्सेज़ विद ए डिटेल्ड बायोग्राफिकल एंड हिस्टॉरिकल इंट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. बेविलाक्वा, डी. (2019). *द लाइफ़ ऑफ़ रामानन्दी सेंटर्स इन वाराणसी. रिलिजन्स ऑफ़ साउथ एशिया,* 13(2), 130-159।
14. मित्र, डी. पी. (2024). *द इम्पैक्ट ऑफ़ रिलीजियस रिवाइवलिज़्म ऑन कंटेम्परेरी सोशल मूवमेंट्स: ए सोशियोलॉजिकल एनालिसिस. साउथ इंडिया जर्नल ऑफ़ सोशल साइंसेज़।*
15. जिंदल, ए., सरस्वत, एस., एवं शर्मा, ए. (2025). *द सबाल्टर्न स्पीक्स थ्रू भक्ति: ए क्वेस्ट फ़ॉर सोशल इंटेग्रिटी एंड एमैनसिपेशन. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 11-14।
16. बोरुआ, ए. (2025). *एक्सप्लोरिंग सोशल कोहेशन ऑन भक्ति पोएट्री: ए डिजिटल ह्यूमैनिटीज़ अप्रोच. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 15-19।
17. मित्र, डी. पी. (2024). *काशी में रामानन्दी संप्रदाय: परंपरा, आधुनिकीकरण एवं शहरी प्रभाव. मानव।*
18. सिंह, आर. पी. (2025). *आर्टिकुलेटिंग सोशल कोहेशन इन दलित स्पिरिचुअलिटी: फाइंडिंग्स फ्रॉम भक्ति ओरचर्स ऑफ़ गंगा रौतायिन इन अवधि फोक साइकी. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 24-28।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
PEER REVIEWED AND REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:2(4), February 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

19.दहिया, जी., एवं दहिया, पी. वी. (2025). *रिकॉन्सेप्चुअलाइजिंग इंक्लूसिविटी एंड रेज़िस्टेन्स: एन एक्सप्लोरेशन ऑफ़ भक्ति नैरेटिव्स ऐज़ ए रिस्पॉन्स टू रिलीजियस फंडामेंटलिज़्म एंड सोशल इनइक्वलिटी इन कंटेम्परेरी इंडिया. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 61-65।

20.कौर, एम. (2025). *बॉडीज़ ऑफ़ डिवोशन: फीमेल ऑटोनॉमी एंड स्पिरिचुअल रेज़िस्टेन्स इन भक्ति पोएट्री. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 103-107।

21.चस्वाल, डी., एवं चस्वाल, पी. के. (2025). *भक्ति मूवमेंट ऐज़ ए कैटेलिस्ट फ़ॉर लिंग्विस्टिक एवोल्यूशन इन फोक कल्चर. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 122-126।

22.बसुमातारी, जी. (2025). *रेज़िस्टिंग सोशियो-कल्चरल नॉर्म्स थ्रू द एजेंसी ऑफ़ भक्ति: द ऑटोबायोग्राफीज़ ऑफ़ रससुंदरी एंड बहिना बाई. दृष्टि: द साइट,* 14(1), 66-70।

23.मित्र, डी. पी. (2023). *भक्ति मूवमेंट इन नॉर्दर्न इंडिया: द केस ऑफ़ वैष्णविज़्म. मध्य भारती।*